पूर्वोत्तर प्रभा
(सिक्किम विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)
Journal Home Page: **http://supp.cus.ac.in/**

शिवमूर्ति की कहानियों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन

पंचराज यादव
शोधार्थी, हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय असम
ईमेल: panchraj2@gmail.com

शोध सारांश: हिंदी कहानी में शिवमूर्ति एक चर्चित कहानीकार हैं। उनकी कहानियों में वर्ग-संघर्ष और सत्ता संघर्ष की उपस्थिति जिस सलीके से मिलती है वह बहुत रोचक है। मुख्यत: स्त्री को केंद्र में रख कर जिस नाटकीयता से वो कहानियों का लेकर आते हैं वो हर गाँव और घर की कहानी प्रतीत होने लगती है। हिंदी जगत में इनकी कहानियों के विभिन्न पक्षों पर ख़ूब लिखा पढ़ा गया है। इस लेख के द्वारा शिवमूर्ति की कहानियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने की कोशिश की गयी है। मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति इद, इदम और सुपर इदम के सिद्धांत पर व्यवहार करता है इन्हीं के कारण वह सकारात्मक एवं नकारात्मक कार्यों में संलग्न होता है। हिंदी में बहुत सी कहानियाँ मनोविज्ञान केन्द्रित हैं। शिवमूर्ति की कहानियों को भी इस नजरिये से देखा जा सकता है। कुंठाग्रस्त एवं प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त विभिन्न पात्र इनकी कहानी में हैं। लेखक ने कहानी की विषयवस्तु और घटनाओं के चित्रण में मनोवैज्ञानिक निकष पर सफलता पाई है।

सूचक शब्द: मनोविज्ञान, द्वंद्व, स्वाभिमान, सामाजिक रूढ़ि, अधिकार, परिवेश।

मूल लेख

कथाकार शिवमूर्ति अपने साहित्य की बनावट एवं बुनावट में एक ख़ास किस्म की रंगत लेकर उपस्थित होते हैं। जिससे उनके लिखे साहित्य को पढ़ने वाला बखूबी उसके प्रति आकृष्ट होता जाता है। लगभग तीन दशक की अपनी कथा यात्रा में वे इकलौते साहित्यकार दिखते हैं जो जिस परिवेश में जीते हैं उसे गहरे अंतर्मन पर उतारकर कथा में रूपांतरित कर लेते हैं। यह रूपांतरण भी ऐसा कि सबके मानस पटल पर छा जाए। इस प्रक्रिया में सिर्फ केंद्रीय पात्र ही नहीं कहानी का एक-एक जर्रा यहां अहम रोल अदा करता है। खुरपी-हंसिया, चूल्हा-चौका, घर-द्वार, गली- मोहल्ला, खेत-खलिहान, पर-पंचायत और गंवई ठाठ। इनके यहाँ निरक्षर पात्रों में भी प्रतिरोध की चेतना है और साक्षर युवा वर्ग में भी कुंठा एवं नैराश्य दिखता है। इन परिस्थितियों के पीछे कैसा मनोविज्ञान काम करता है, यह देखना इस लेख का ध्येय है। अपने लम्बे साहित्यिक जीवन में शिवमूर्ति ने समाज की महत्वपूर्ण समस्याओं पर अपनी कलम चलाई है और अपनी लेखनी का लोहा मनवाया है। अकादमिक जगत से परे रहकर लिखना आज के समय में बड़ी चुनौती है किन्तु इस चुनौती से शिवमूर्ति तनिक भी भयभीत

नहीं दिखते। उनमें एक वर्ष में दसों रचनाएँ लिख कर छा जाने की भी उत्कंठा नहीं दिखती। लेकिन गतिशीलता ऐसी है कि उनका लेखन पूरी परिपक्वता के साथ आता है। कैसे रचते हैं वे अपनी कहानियों को इस संदर्भ में वे खुद बताते हैं - "लिखना मेरे लिए कबाड़ख़ाने से साईकिल कसने जैसा है। जैसे मिस्त्री अपने कबाड़ से फ्रेम, रिम, हैंडिल, घंटी, गेयर वगैरह ढूंढ कर साईकिल का ढांचा खड़ा करता है। यह नए पैक्ड पुर्जों से कसने जैसा 'सेटिल्ड' काम नहीं है। इसमें मेल मिलाना पड़ता है।" (शिवमूर्ति, 2014, पृ. 25) यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि शिवमूर्ति ने अपनी कहानियों का ढांचा हर उस जगह से उठाकर खड़ा करने की कोशिश की है जो सामान्यतः नजरों से ओझल हो जाता है।

शिवमूर्ति फैंटेसी में जीने वाले लेखक नहीं हैं। न तो उनके यहाँ कल्पना की अतिशयता पाई जाती है। कुछ लम्बी कहानियाँ पाठक के धैर्य की परीक्षा अवश्य लेती हैं यह इनकी सीमा है। शिवमूर्ति की कहानियों को पढ़ते समय यह देखा जा सकता है। उनके लीड रोल वाले मुख्यतः पुरुष पात्र गहरे अंतर्द्वंद्व, कुंठा, प्रतिशोध में उलझे रहते हैं। इसके पीछे उनका पुरुषवादी मनोविज्ञान होता है। उन्हें अपने तख्तोताज की फिसलती जमीन दिखती है। कारण स्त्री इनके यहां कुछ अलग ही तेवर में चुनौती देती हैं। वे खुद समस्याओं एवं रूढ़ियों से टकराती हैं। किसी मसीहा के सहारे बैठती नहीं हैं।

शिवमूर्ति की कहानियों में 'केशर कस्तूरी', 'भरतनाट्यम', 'सिरीउपमा जोग', 'कसाईबाड़ा', 'तिरिया चरित्तर','अकालदंड', 'ख्वाजा-ओ मेरे पीर', 'कुच्ची का कानून' एवं 'बनाना रिपब्लिक' 'जुल्मी' आदि प्रमुख हैं। प्रेमचंद ने कहा है एक सफल कहानी वह होती है, जिसका कथानक किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित होता है। शिवमूर्ति इस कसौटी पर पूरेखरे उतरते प्रतीत होते हैं। इनके यहाँ हर पात्र का अपना अलग मनोविज्ञान काम करता है। कोई प्रापर्टी के लिए हत्या करने पर आमादा है तो कोई अपनी काम-ग्रंथि से बेकाबू हो घात लगाये बैठा है। किसी को पुस्तैनी वारिस बनने की चिंता है तो कोई परंपरा का बोझ ढोने के लिए नाजायज को भी जायज और जायज को भी नाजायज साबित करने को एड़ी चोटी जोर लगाता है। सबकी अपनी-अपनी कहानी है लेकिन सबके केंद्र में है - स्त्री। जिसे अकेले लड़ना है इन सभी मनोवृत्तियों से पार पाने को। सबसे दिलचस्प यह है कि इन निर्मितियों के पीछे सत्ता धारी पुरुष प्रधान समाज है। जो सदियों से ऐसी मानसिकता निर्मित करता आया है कि स्त्री पुरुष पर निर्भर रहे। यदि वह स्वविवेक से पर-निर्भरता को चुनौती देती है तो वही पुरुष का ईगो हर्ट होने लगता है। फिर समाज क्या कहेगा इसका भय दिखाकर चुप कराने की कोशिश की जाती है। इसी सामाजिक ताने-बाने के बीच गहरे मनोविज्ञान की कहानी है 'कुच्ची का कानून'। इस कहानी की संवाद धर्मिता लेखक की मनोवैज्ञानिक समझ का शानदार नमूना पेश करती है। पूरी कहानी तर्क पर तर्क की विजय पाने की कहानी प्रतीत होती है। मनोवैज्ञानिक सत्य की पुष्टि करता गुलकी का यह कथन दृष्टव्य है- "जब मेरी भूख पूरे गाँव की भूख नहीं बनती, मेरा डर पूरे गाँव का डर नहीं बनता, मेरा दुःख-दर्द पूरे गाँव का दुःख-दर्द नहीं बनता तो मेरे किए हुए किसी काम से पूरे गाँव की नाक कैसे कट जाएगी?" (शिवमूर्ति, 2017, पृ. 119) संभवतः ऐसे ही सत्य के लिए प्रेमचंद ने कहानी के मनोवैज्ञानिक आधार की बात की थी। 'कुच्ची का कानून' कहानी की समस्त घटनाओं के पीछे गहरा द्वंद्व और मनोविज्ञान दिखता है। पूरी कहानी एक विधवा स्त्री के हक़ और पितृसत्तात्मक समाज की वर्चस्ववादी नीति के बीच जद्दोजहद की कहानी है। कुच्ची का पति

बजरंगी विवाह होने के पश्चात जल्द ही काल-कलवित हो जाता है। उसका जेठचाहता है कि गुलकी को संतान न हो जिससे सारी संपत्ति हमारी हो जाये। उधर गुलकी एक स्वाभिमानी जिन्दगी जीने वाली औरत है। वो कहीं दूसरी जगह जाना नहीं चाहती और बच्चे की चाहत रखती है जिससे उसे यहां स्वाभिमान से जीने और रहने का हक़ मिल सके। गुलकी का गर्भ धारण करना इस पूरी कहानी के केंद्र में है उससे जुड़े फिर अनेकों प्रसंग इस कहानी को नई ऊंचाई देते हैं। जो समाज की नजरों में असंवैधानिक है जिससे पूरे गाँव में हाहाकर मचा है। कहानी का प्रारम्भ इस वाक्य से होता है- 'गाँव की औरतों ने दांतों तले ऊँगली दबाई' लेखक का मनोविज्ञान काबिल-ए-तारीफ़ है। पहला ही वाक्य ऐसा कि आप पूरी कहानी पढ़ जाएँ इस जिज्ञासा में कि आगे क्या-क्या हुआ? इस कहानी में नायिका कुच्ची को अकेले पूरे सिस्टम से लड़ना होता है। जहाँ एक स्त्री को पराजित करने के लिए घर, परिवार, पंचायत यहां तक कि औरतें भी एक हो जाएँ उस परिस्थति में कुच्ची कितना अपने आप को मनोवैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ करती होगी कि हमें लड़ना है और जीतना है अपने हक़ और अधिकार के लिए। समझौता तो किसी भी कीमत पर नहीं करना है। एक से बढ़कर एक अपमान उसे बर्दास्त करने पड़ते हैं। इसका एक उदहारण देखिए उसके मायके से आया भाई कहता है-

> "माई ने कहलाया है कि कुचिया अब मायके लौटने की न सोचे। वह मेरे लेखे मर गयी।
> वह सिहर जाती है।
> कहती है माई ने कहलाया है या बड़की भाभी ने?
> दोनों ने-भाई कहता है
> और बप्पा ने क्या कहलाया है?
> बप्पा को कुछ पता नहीं।
> और तुम क्या कहते हो?
> भाई जिसको उसने गोद में खेलाया है, चुप रह जाता है।
> तुम भी अपने मन की बात कह दो दीपू..
> भाई खड़ा हो जाता है।
> वह किवाड़ की आड़ से बाहर आते हुए कहती है- जाकर माई से कह देना मैं उनके घर की ओर मुंह करके रोउंगी भी नहीं। " (शिवमूर्ति, 2017, पृ. 111)

ऐसा जवाब देने के लिए दृढ़ता और विश्वास उस स्त्री में कैसे आया होगा? जिसका कोई साथ नहीं दे रहा है। वह है स्वाभिमान और यथास्थिति को बदल कर रख देने का अदम्य साहस जो मनोविज्ञान के रूप में काम कर रहा है। यहां शिवमूर्ति की प्रशंसा की जानी चाहिए। एक गांव की स्त्री को इतने मनोवैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ प्रस्तुत करना, बिना व्यापक समझ के संभव नहीं है। शिवमूर्ति की कहानियों की सफलता विषयवस्तु के साथ-साथ परिवेश पर बहुत निर्भर है। जो परिवेश वो लाते हैं चाहे वो गाँव की मड़ई हो या खेत का टूवेल हो, आकाश से बिजली गिरना हो या फिर तिरिया चरित्तर कहानी में विमली को लाल करछुल से दागा जाना। पूरी संरचना एवं परिवेश की निर्मिति में लेखक ने गहरे मनोविज्ञान का परिचय दिया है। 'तिरिया चरित्तर' कहानी में परिवेश का एक प्रसंग देखिए- "चारों तरफ सन्नाटा! कुत्ते तक चुप हैं। पतोहू जिबह होती गाय की तरह 'अल्लाने'

लगती है। सोने वाले बच्चे जागकर रोने लगते हैं। जगे हुए बच्चे डरकर भागने लगते हैं। ..पंचायत टूट रही है हवा में भोर की ठण्ड आ गयी है।" (शिवमूर्ति, 2015, पृ. 123) इसी तरह एक प्रंसग और है यह गाँव! यह देश! यह ढकुलाही! ए भीटे! काठ जामुनों का जंगल। मेरा दुआर! मेरा मोहार! मेरा चूल्हा! मेरी चक्की! कौन उसकी बकरी को चारा देगा? सबसे नाता टूट रहा है। 'कुच्ची का कानून'कहानी के अंत में परिवेश कुछ इस तरह उपस्थित होता है- "घुप्प अंधियारे के बाद दसमी के चाँद के धीरे-धीरे फरियाते उजाले में यह समझ पाना कठिन है कि बनवारी हाथ उठा रहा है या जोड़ भी रहा है। हलकी बहती पूर्व अचानक तेज हो गयी। सूखे पत्ते उड़ने लगे आंधी-पानी आएगा क्या?" (शिवमूर्ति, 2017, पृ. 141) कहने का आशय यह है कि जो परिवेश है उसकी उपस्थिति कहाँ और कैसे प्रांसगिक होगी लेखक को इसका पूरा भान है। इनके यहाँ परिवेश घटनाओं के संयोजन के साथ पात्रों के मनोवैज्ञानिक स्थितियों की निर्मिति में सहयोग करता है।

'भरतनाट्यम' कहानी में द्वंद्व, कुंठा, नैराश्य, तिरस्कार जैसी अनेक मनोदशाओं का दृश्य मिलता है। बेरोजगार युवा अपने ही घर में जो सहन करता है वह किसी को भी विक्षिप्त बना सकता है। उसकी पत्नी की बेटा पैदा करने की चाहत के लिए अपने जेठ से सम्बन्ध बनाना हो या फिर दरजी खलील के साथ भाग जाना हो यह दर्शाता है किव्यक्ति के अन्दर सामजिक रूढ़ियाँ और मान्यताएं कितना मनोवैज्ञानिक दबाव बनाती हैं। वह इस चाहत में किसी भी हद तक जाने को तैयार हो जाता है। किन्तु इसके बावजूद युवा का यह कथन कि- "चली गयी, चलो, जहाँ भी रहे, सुखी रहे...लेकिन भागना ही था तो एक दिन पहले भाग जाती। मैं टूटने से बच जाता...घूस देने से...पथभ्रष्ट होने से..। " (शिवमूर्ति, 2017, पृ. 79)

मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने मनोविश्लेषण की तीन दशाओं की बात की है अहम्, इदम और परम अहम्। इदम का संबंध व्यक्ति के मानसिक गुणों से है जो अवचेतन मन में केन्द्रित होता है। यह शारीरिक सुख के लिए प्रेरित करता है। इसे सही गलत की कोई परवाह नहीं होती है और न ही चारित्रिक मूल्यों को तवज्जो देती है। इस दृष्टि से देखें तो 'अकाल दंड' के सिक्रेटरी बाबू, तिरिया चरित्तर का बिसराम, 'भरतनाट्यम' का खलील दरजी, 'कुच्ची का कानून' का बनवारी आदि पात्र इदम मनोवृत्ति वाले हैं जबकि 'कुच्ची का कानून' में पंचायत के मुखिया बलई बाबा, धनराज मिसिर, बलराज पांडे, लछिमन चौधरी एवं गाँव की बुजुर्ग महिलाएं,'तिरिया चरित्तर' के बोधन महतो, पुजारी जी, 'बनाना रिपब्लिक' के बैजनाथ बाबा 'ख्वाजा ओ मेरे पीर के' मामा, 'जुल्मी' कहानी की बुआ एवं दादी ये सारे पात्र मनोविज्ञान के परम अहम के प्रतिनिधि पात्र माने जा सकते हैं। इनका चरित्र समस्त घटनाओं को सांस्कृतिक एवं नैतिक मान्यताओं एवं आदर्शों से जोड़कर देखने वाला है। फ्रायड के अनुसार परम अहम् का सम्बन्ध किसी व्यक्ति के नैतिक एवं विचारशील पक्ष से होता है। इसमें व्यक्ति समाज के नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों को अपने व्यक्तित्व का अंग बना लेता है। एडलर का मानना है कि मनुष्य की सर्वाधिक प्रबल अकांक्षा प्रभुत्व स्थापना की है। किन्तु जब वह ऐसा नहीं कर पाता तब उसमें हीनता की भावना जन्म लेने लगती है ऐसे में वह इसके बदले कुछ अलग करने की सोचता है। शिवमूर्ति की कहानियों में देखें तो 'बनाना रिपब्लिक' के ठाकुर 'कुच्ची के कानून' का बनवारी 'तिरिया चरित्र' का बिसराम 'भरतनाट्यम' में बेरोजगार युवक के पिता 'कसाईबाड़ा' के लीडर इसी मनोविज्ञान से ग्रस्त दिखते हैं। इस प्रकार देखा जा सकता है कि शिवमूर्ति की कहनियां एक अलग परिधि को छूती है। इन कहानियों में मनोविज्ञान

की शिनाख्त आसानी से की जा सकती है। शिवमूर्ति के साहित्यिक प्रासंगिकता और उनके कद की बात करें तो मैं निर्मल वर्मा का एक कथन जोड़ना चाहूँगा क्योंकि शिवमूर्ति का साहित्य जगत में योगदान कुछ ऐसा ही है जो पुरस्कारों के दायरे से बड़ी चीज है। प्रख्यात साहित्यकार निर्मल वर्मा लिखते हैं- "आने वाले वर्षों में पता नहीं कितने लेखकों को अकादमी पुरस्कार मिलेंगे, शिखर पुरस्कार मिलेंगे, ज्ञानपीठ पुरस्कार लेकिन कुछ लेखक होते हैं जिनका अमरत्व और जिनकी याद पुरस्कारों में नहीं उस एक–दो इंच जमीन से जुड़ी होती है, जिसे उन्होंने अपने लेखन में से आगे बढ़ाया है। पुरानी सीमाओं को लांघकर अजानी धरती पर जीने का जोखिम उठाया है। " (वर्मा, 2011, पृ. 385)

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

शिवमूर्ति.(2014). *सृजन का रसायन*. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

शिवमूर्ति. (2017). *कुच्ची का क़ानून*. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

शिवमूर्ति.(2015). *केशर कस्तूरी*. राजकमल प्रकाशन: नयी दिल्ली.

वर्मा, निर्मल. (2011). *शताब्दी के ढलते वर्षों में*. भारतीय ज्ञानपीठ: नयी दिल्ली.